फलों की डाली

● एक विशिष्ट कृति

फलों की डाली

गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर

•

भाषांतर कर्ता—
शंकरदेव विद्यालंकार
वाइस-प्रिंसिपल—महिला कॉलेज, पोरबन्दर ।

प्र ग ति प्र का श न
आगरा—३

ॐ

पितरौ वन्दे

●

शंकरदेव

फलों की डाली

मुझे अनुमति प्रदान करो, मैं अपनी बगिया के फलों को चुन कर, डालियाँ भर भर कर, तुम्हारे आँगन में लाया चाहता हूँ। यद्यपि कुछ फल नष्ट होगये हैं और कुछ अभी अपरिपक्व हैं। क्योंकि ऋतु अपनी परिपूर्णता के कारण बोझल होगई है और वनछाया में ग्वाले की करुणाभरी बाँसुरी बज रही है।

मुझे अनुज्ञा प्रदान करो। मैं नदी में अपनी नैया ले जाना चाहता हूँ। बसन्ती बयार विक्षुब्ध हो उठी है। वह अलसाई हुई लहरों को आन्दोलित करके कलरव कर रही है।

वाटिका ने अपना समस्त फल-संभार समर्पित कर दिया है और संध्या की परिश्रांत वेला में, तुम्हारे घर से, सूर्यास्त में परले पार से निमंत्रण की पुकार सुनाई दे रही है।

अपनी तरुणाई के दिनों में मेरा जीवन एक प्रसून की तरह था, जो प्रसून अपनी समृद्धि में से दो एक पँखुरियाँ गिरा देता है—जब वांसतिक पवन उसके द्वार पर भिक्षा के लिए आता है। इस कार्य में वह किसी प्रकार की क्षति नहीं अनुभव करता।

अब यौवन के अवसान पर मेरा जीवन एक फल की तरह है। उसके पास बचा कर रखने के लिए कुछ भी नहीं है। अपनी मधुरिमा के समस्त संभार के साथ वह अपने को पूर्णतया अर्पित करने की प्रतीक्षा कर रहा है।

क्या बसन्त ऋतु का आनन्दोत्सव केवल ताजे टटके पुष्पों के लिए ही है, शुष्क पत्तियों और मुरझाये हुए पुष्पों के लिए नहीं ?

क्या सागर के संगीत की तान केवल उठती हुई तरंगों के संग ही होती है ? क्या लहरों के उतराव के साथ वह गीत नहीं गाता ?

उस गलीचे में मणि-माणिक्य जड़े हुए हैं, जिस पर मेरे राजा खड़े हैं, पर साथ ही सहनशील मिट्टी के कण भी उसके चरण-स्पर्श की प्रतीक्षा कर रहे हैं।

मेरे स्वामी के समीप बैठने वाले ज्ञानवान् और महान् व्यक्ति विरले ही हैं, परन्तु उसने तो मुझ मूर्ख को भी अपनी भुजाओं में ले लिया और सदा के लिए अपना सेवक बना लिया है।

प्रभात होते ही मैं जाग उठा और मुझे उसकी चिठिया मिल गई। मुझे नहीं पता उसमें क्या लिखा है, क्यों कि मैं वाँचना नहीं जानता।

मैं ज्ञानी को उसकी पोथियों के साथ रहने दूँगा। मैं उसे कष्ट नहीं दूँगा। क्योंकि किसे पता है कि जो कुछ उन अक्षरों में लिखा है, उसे वह पढ़ भी सकता है?

मुझे इसे अपने ललाट से लगाने दो। इसे अपनी छाती से दबा लेने दो।

जब निशा नीरव हो जायगी और एक एक करके तारिकाएँ निकल आयेंगीं, तब मैं इसे अपनी गोद में रख लूँगा और मौनभाव से बैठा रहूँगा।

मर्मर करती हुई पत्तियां इसे मेरे लिए उच्च स्वर से पढ़ देंगीं। द्रुतगति से बहती हुई नदी इसका गान करेगी। सप्तर्षि-मंडल के तारे आकाश से मेरे लिए इसे गायेंगे।

जिसे मैं ढूंढ़ता हूँ, वह मुझे नहीं मिलता। मुझे समझ में नहीं आता, मैं क्या सीखूँ? परन्तु इस अनवाँची चिठिया ने मेरे भार को हलका कर दिया है और मेरे विचारों को गीतों में परिवर्तित कर दिया है।

एक अंजलि-भर धूलि तुम्हारे संदेश को छिपा सकती थी, जब मैं उस संदेश का अर्थ नहीं जानता था।

अब मैं अधिक समझदार हो गया हूँ और उसमें सब कुछ पढ़ सकता हूँ, जो पहले छिपा हुआ था।

वह संदेश पुष्पों की पखुरियों में अंकित है। तरंगें अपने फेन में उसे प्रकाशित करती हैं। शैलमालाएं उसे अपने शिखरों पर ऊँचे उठाये हुए है।

मैंने अपना मुख तुमसे फेर लिया था, इसीलिए वे अक्षर टेढ़े-मेढ़े पढ़े गये थे और उनका अर्थ मैं नहीं जान पाया था।

जहां सडकें बनी होती हैं, वहां मैं अपनी राह भूल जाता हूँ।

विस्तीर्ण खुले जल में और सुनील गगन में, बटिया की कोई रेखा नहीं है।

पगडंडियाँ परिन्दों के पंखों से, तारों की जगमगाहट से और पर्यटन-शील ऋतुओं के पुष्पों से आच्छादित हैं।

और मैं अपने हृदय से पूछता हूँ कि क्या उसके रुधिर को अनजानी राह का ज्ञान है?

खेद है, मैं घर में नहीं रह सकूँगा। यह घर अब मेरे लिए घर नहीं रहा है, क्योंकि वह चिरंतन अजनबी मुझे बुला रहा है। वह गैल पर चला जा रहा है।

उसके चरणपात मेरी छाती से टकरा रहे हैं। वे मुझे पीड़ा दे रहे हैं।

झंझा प्रबल हो उठा है। सागर क्रंदन कर रहा है।

मैं अपनी समस्त चिन्ताओं और शंकाओं को छोड़कर बहाव के संग चल दिया हूँ, क्योंकि वह अजनबी मुझे पुकार रहा है। वह राह पर चला जा रहा है।

हे मेरे हृदय, प्रयाण को तैयार हो जाओ। जो विलम्ब कर रहे हैं, उन्हें छोड़ दो। उन्हें रहने दो।

क्योंकि तुम्हारा नाम प्रातःकालीन आकाश में पुकारा गया है। किसी की भी प्रतीक्षा मत करो।

कलिका रात्रि की और ओस की आकांक्षा कर रही है, परन्तु विकसित कुसुम प्रकाश की स्वतंत्रता के लिए मचल रहा है।

मेरे हृदय, आवरण को फाड़ कर बाहर आ जाओ।

जब मैं अपनी संचित द्रव्य निधि में रुका बैठा था, तब मैं ऐसा अनुभव करता था कि मैं उस कीट के समान हूँ जो अंधकार में बैठा-बैठा अपने फल को खाता रहता है, जिसमें वह पैदा हुआ है।

मैं इस विनाशशील कारागार को छोड़ दूँगा। मैं इस सड़े-गले सन्नाटे में मंडराना नहीं चाहता, क्योंकि मैं तो चिरंतन यौवन की खोज में जा रहा हूँ।

मैं उस सबको दूर फेंक दूँगा, जो मेरे जीवन के साथ मेल नहीं खाता या जो मेरी हँसी की तरह हलका नहीं है।

मैं समय के साथ दौड़ रहा हूँ। हे मेरे हृदय, तुम्हारे रथ में वह कवि नृत्य करता है, जो अपनी यात्रा में गाता रहता है।

तुमने मेरा हाथ पकड़ कर मुझे अपने समीप खींच लिया। मुझे सब मनुष्यों के सामने ऊँचे आसन पर बिठाया—जब तक मैं झेंपू और भीरू बना रहा, हिलने-चलने और अपनी राह पर चलने में अशक्त रहा, प्रत्येक कदम पर संदेह और तर्क-वितर्क करता रहा कि कहीं मेरे पैर उनकी अक्तव्या के कांटे पर न पड़ जांय।

अन्त में मैं स्वाधीन हो गया हूँ। धक्का मिल चुका है, अपमान का नगारा बज चुका है, मेरा आसन नीचे धूल में गिरा दिया गया है।

मेरे मार्ग मेरे सन्मुख खुले पड़े हैं। मेरे पंख गगन में उड़ने की आकांक्षा से भरे हुए हैं। मैं अर्धरात्रि के टूटते हुए तारों से मिलने जा रहा हूँ और अति-गहरी छाया में कूदना चाहता हूँ।

मैं झञ्झा द्वारा उठाये गये ग्रीष्मकालीन बादल की तरह हूँ, जो अपने सुनहरे मुकुट को फेंक कर विद्युत् की श्रृंखलाओं पर वज्र की तलवार बन कर लटका रहता है।

अपमानितों के धूल भरे मार्ग पर मैं हर्षोन्मत्त होकर दौड़ रहा हूँ। मैं तुम्हारे अंतिम स्वागत के लिए समीप आ पहुँचा हूँ।

शिशु अपनी माँ को तभी पाता है, जब वह गर्भ को छोड़ देता है।

जब मैं तुमसे पृथक हो गया हूँ, तुम्हारे घर से बाहर फेंक दिया गया हूँ, तब मैं तुम्हारे मुख को देखने में स्वाधीन हूँ।

☙

यह मेरी मणि-माला केवल मेरा उपहास करने के लिए ही मेरा शृंगार करती है।

जब यह मेरे कंठ में पड़ी होती है, तब यह उसे खरोंचती रहती है। जब मैं इसे तोड़ फोड़ कर फेंक दिया चाहता हूँ, तब यह मेरा गला घोंटती है। यह मेरे कंठ को जकड़ लेती है। यह मेरे गाने को रोक लेती है।

मेरे स्वामिन्, यदि मैं इसे तुम्हारे हाथों में अर्पित कर देता, तभी बच सकता।

इसे तुम मुझसे ले लो और इसके बदले में मुझे एक फूल माला द्वारा बाँध लो, क्योंकि अपने कंठ में यह रत्नमाला पहिन कर, तुम्हारे सामने खड़े रहने में मुझे लज्जा आती है।

नीचे वेगवती और विमल-सलिला यमुना नदी बह रही है। ऊपर बाहर निकला हुआ कगार भय उपजाता है।

वनराजियों से घनी और वेगवती जलधाराओं से कटी-छटी पर्वत-मालाएँ चहुं ओर घिरी हुई हैं।

सिक्खों के गुरू श्री गोविन्दसिंह जी एक चट्टान पर बैठे हुए धर्मग्रंथ का पाठ कर रहे हैं। उनका शिष्य रघुनाथ, जिसे अपनी संपदा का बड़ा अभिमान था, वहाँ आ पहुँचा। प्रणाम करके वह कहने लगा—"महाराज, आप की सेवा में अपनी तुच्छ भेंट लाया हूँ, जो आपके अंगीकार के योग्य तो नहीं है।"

बहुमूल्य रत्नों से जड़ी हुई, सुवर्ण कंकणों की एक जोड़ी, उसने गुरु-चरणों में प्रस्तुत की।

गुरूजी उनमे से एक कड़े को उठा कर अपनी अंगुली पर गोल गोल घुमाने लगे। हीरों से जगमगाती प्रभा-किरणें चहुँ ओर फूट निकलीं।

एकाएक वह कंकण उनके हाथ से फिसल गया और किनारे पर लुढ़कता लुढ़कता, जल प्रवाह में जा गिरा।

हाय रे, रघुनाथ चीख उठा और प्रवाह में कूद पड़ा।

गुरूजी के नयन पुनः ग्रथ पर लग गये। जलप्रवाह ने ककण को रख कर छिपा लिया, जिसे उसने चुराया था। प्रवाह अपने पथ पर आगे को चल पड़ा।

थका-हारा रघुनाथ साँझ की धूमिल छाया मे, गुरूजी के पास उपस्थित हुआ। उसके शरीर से पानी टपक रहा था।

हांफते हांफते उसने कहा—"मै उसे अब भी ला सकता हूँ, यदि आप यह बताये कि वह कहाँ गिरा था।"

गुरूजी ने बचा हुआ सुवर्ण-ककण-प्रवाह मे फेक दिया और कहा—"वहाँ"।

हे मेरे सहयात्री, चलना तुमसे प्रतिपल मिलने के बराबर है।

यह तुम्हारे चरण-पात की तान पर गाने के समान है।

जिसे तुम्हारे श्वास स्पर्श कर लेते हैं, वह किनारे के सहारे तैरना नहीं चाहता। वह दुःसाहस भरी पाल हवा में फैला देता है और विक्षुब्ध जल पर सवारी करता है।

जिसने अपने द्वार पूरी तरह खोल दिये हैं और जो आगे बढ़ता है वह तुम्हारे अभिनंदन प्राप्त करता है।

वह अपने लाभ को गिनने के लिए रुकता नहीं, नाहीं अपनी हानि पर शोक करता है। उसका हृदय उसकी यात्रा के लिए ढोल बजाता है, क्योंकि हे सहयात्री, यही प्रत्येक कदम पर तुम्हारे संग चलता है।

विश्व के सर्वश्रेष्ठ वरदान का मेरा अंश मुझे तुम्हारे हाथों से प्राप्त होगा—ऐसा तुम्हारा वचन था। इसीलिये तुम्हारा प्रकाश मेरे अश्रुओं में चमकता है।

मैं अन्यों द्वारा ले जाये जाने से डरता हूँ कि कदाचित् मैं किसी सड़क के छोर पर, मेरा मार्ग-दर्शक बनने की प्रतीक्षा करने वाले तुमको छोड़ न दूँ।

मैं अपनी मनचाही राह पर चलता रहता हूँ, जब तक मेरी मूर्खता ही तुम्हें मेरे द्वार पर खेंच नहीं लाती।

क्योंकि मुझे तुम्हारा वचन मिल चुका है कि विश्व के सर्वोत्तम वरदान का मेरा भाग, मुझे तुम्हारे हाथों से ही प्राप्त होगा।

मेरे स्वामिन्, तुम्हारी वाणी सरल है, परन्तु उनकी बातें सरल नहीं, जो तुम्हारी चर्चा करते हैं।

मैं तुम्हारे नक्षत्रों की भाषा को और तुम्हारे वृक्षों के मौन को समझता हूँ।

मैं जानता हूँ, मेरा हृदय एक फूल की तरह खिल उठेगा। मैं जानता हूँ, मेरा जीवन एक गुप्त फुआरे से भर गया है।

तुम्हारे गीत, सुनसान हिम-प्रदेश के पंखियों की तरह मेरे हृदय में फड़फड़ा रहे हैं। वे उसके वसन्त की ऊष्मा में अपना घोंसला बनाया चाहते हैं, और मैं मधु-ऋतु की प्रतीक्षा में ही संतुष्ट हूँ।

वे राह जानते थे और तुमको खोजने के लिए वे संकरी गैल पर चल दिये। परन्तु मैं रात भर बाहर भटकता रहा, क्यों कि मैं राह से अनजान था।

मुझे पर्याप्त शिक्षा नहीं मिली थी कि अंधकार में तुमसे डरता रहूँ। अतः मैं अनजाने ही तुम्हारे द्वार की देहली पर पर आ पहुँचा।

सयाने लोग मुझे डाँट कर चले जाने को कहने लगे, क्योंकि मैं उस राह से नहीं आया था।

मैं शंकित होकर लौट चला, परन्तु तुमने मुझे जोर से पकड़ लिया, और उनके गर्जन-तर्जन दिन-दिन उच्चतर होते गये।

मैं अपना मिट्टी का दीपक अपने घर से निकाल लाया और कहने लगा—"आओ बालको, मैं तुम्हारा पथ प्रकाशित कर दूं।"

रजनी अब भी अँधियारी थी। मैं राह को उसकी नीरवता में छोड़ कर लौट आया और चिल्लाकर कहने लगा—"हे ज्योति, मुझे प्रकाश प्रदान करो, क्यों कि मेरा मिट्टी का दीपक धूल में टूटा पड़ा है"

नहीं, कलियों को कुसुम-रूप में कुसुमित करने की शक्ति तुममें नहीं है।

कली को हिलाओ, चाहे उसकी ताड़ना करो, उसको कुसुमित करना तुम्हारे बस की बात नहीं है।

तुम्हारा स्पर्श उसे मैला कर देता है। तुम इसकी पँखुरियों के टुकड़े-टुकड़े कर देते हो और उन्हें धूलि में बिखेर देते हो। फिर भी उनमें कोई रंग नहीं आता। नहीं कोई महक होती है।

हा हन्ता, कलिकाओं को कुसुम में परिणत कर देना तुम्हारे बस की बात नहीं है।

जो कलियों को प्रफुल्लित कर देता है।

उसकी एक चितवन से कली की शिरा-शिरा में जीवन का रस स्पंदित होने लगता है।

उसके श्वास से पुष्प अपने पंख फैला देता है और पवन में फड़फड़ाने लगता है।

हृदय की उमंग की तरह रंग फूट पड़ते हैं। सौरभ एक मधुर रहस्य को प्रकट कर देता है।

जो कलिका को विकसित करता है, वह कितनी सहजता से ऐसा करता है।

माली सुदास ने अपनी तलैया से एक कमल-पुष्प तोड़ा। एक सुन्दर कमल फूल—जो शिशिर की विनाश-लीला से बच रहा था।

माली उसे बेचने के लिए, राजा के महल-द्वार पर जा पहुंचा। वहाँ उसे एक यात्री मिला। उसने कहा—"इस अंतिम फूल का दाम बताओ। मैं इसे भगवान् बुद्ध ने चरणों में अर्पित किया चाहता हूँ"

"एक सुवर्ण-मुद्रा देकर आप इसे ले सकते हैं।'—सुदास ने कहा। यात्री ने एक सुवर्ण मुद्रा चुका दी।

इसी समय राजाजी महल से बाहर निकल आये। उन्होंने यह फूल लेना चाहा। क्योंकि वे बुद्ध भगवान् के दर्शन के लिए जा रहे थे। वह सोचने लगे—"शीतकाल में खिलने वाला यह विरल कमल पुष्प भगवान् के चरणों में अर्पित करने के लिए मनोहर उपहार होगा।"

सुदास ने कहा—"उसे इस पुष्प के लिए इस यात्री द्वारा एक स्वर्ण मुद्रा प्राप्त हो रही है" राजा ने दस स्वर्ण मुद्राएँ देनी चाहीं और यात्री ने बीस देना सूचित किया।

लोलुप माली विचारने लगा— वे लोग जिसके लिए बोली बोल रहे हैं, वह अधिक लाभ की वस्तु है। माथा झुकाकर उसने कहा—"क्षमा करें, मैं कमल-फूल बेचना नहीं चाहता।"

नगर से दूर आम्रकुंज की प्रशाँत छाया में माली सुदास बुद्ध भगवान् के संमुख खड़ा है। उनके अधरों पर प्रेम का मौन विराज रहा है। तुषार स्नात शरत्काल के प्रातःकालीन तारे की तरह, उनके नयनों में शांति झलक रही है।

सुदास ने उनका मुख निहार कर कमलपुष्प चरणों में रख दिया और भूमि पर अपना मस्तक नवा दिया।

"तात, तुम्हारी क्या अभिलाषा है?"—बुद्ध भगवान् ने मुस्करा कर पूछा।

"एक मात्र आपके चरणों का स्पर्श"—माली सुदास बोल उठा।

हे रजनी, हे अवगुंठन वती रजनी, मुझे अपना कवि बना दे।

कुछ लोग युग-युगों से तुम्हारी छाया में मूकभाव से बैठे हुए हैं। मुझे उनके गीत गाने दो।

देश-देशांतर में और द्वीप-द्वीपांतर में तुम्हारा चक्र-विहीन रथ चुपचाप दौड़ रहा है, उसमें मुझे बिठा दो—समय के राजमहल की रानी, तुमजो इतनी श्यामल और सुन्दर हो।

अनेक प्रश्नकर्त्ता मन प्रच्छन्नरूप से तुम्हारे आँगन में घुस आये हैं। वे तुम्हारे दीपक-विहीन घर में जवाबों की खोज में भटक रहे हैं।

अज्ञात के हाथों से चलाये गये, आनन्द के बाणों से बींधे गये अनेक हृदयों से, अंधकार की नींव को हिलाते हुए, प्रसन्नता के गीत फूट पड़े हैं।

वे प्रबुद्ध आत्माएं, ताराओं की आभा में, उस खजाने को विस्मय से निहार रही हैं, जिसे उन्होंने एकाएक प्राप्त कर लिया है।

मझे उनका कवि बना दो, हे रजनी, अपनी अतल गँभीर नीरवता का कवि बना दो।

एक दिन मैं अपने आन्तरिक जीवन से मिलूँगा—उस आनन्द से, जो मेरे जीवन में निरर्थक धूल में भटका रहे हैं।

मैंने झाँकियों में उसे निहारा है और उसके चंचल श्वास मेरे विचारों को अल्प समय के लिए सुवासित करते हुए, मेरे ऊपर आये हैं।

एक दिन मैं उस आनन्द से मिलूँगा जो मेरे बाहर है और जो प्रकाश के परदे के पीछे रहता है।

मैं अगाध एकान्त में खड़ा हो जाऊँगा, जहाँ पर समस्त पदार्थ ऐसे दिखाई देते हैं, जैसे विधाता ने उन्हें बनाया है।

यह शरत्कालीन प्रभात प्रकाश के प्राचुर्य से थका हुआ है। यदि तुम्हारे गीत अस्थिर और परिश्रात होगये हों तो थोड़ी देर के लिए तुम अपनी बांसुरी मुझे दे दो।

मैं अपनी उमग के अनुसार उसे बजाऊंगा। कभी इसे अपनी गोद में रख लूंगा, कभी अपने ओठों से लगा लूँगा, कभी घास पर अपने समीप रख दूँगा।

संध्या की नीरव गभीरता में मैं फूल एकत्र करूँगा और इसे पुष्पमाला से सजाऊंगा। इसे परिमल से भर दूंगा, दीप जला कर इसकी पूजा करूँगा।

रात आने पर मैं तुम्हारे पास आ जाऊँगा और तुम्हारी बांसुरी तुम्हें वापिस सौंप दूँगा। जब अर्ध-चन्द्र तारों में घूम रहा होगा तब तुम इस पर मध्य निशा का गीत बजाना।

कवि का मन जीवन की लहरियों पर, पवन और पानी की ध्वनियों के बीच में बहता है और नाचता है।

अब, जब सूर्य अस्त हो गया है और अलसाये हुए नयनों पर गिरती हुई पलकों की तरह तिमिराच्छन्न आकाश समुद्र पर फैल रहा है, तब उसकी लेखनी को हटा देने का तथा उसके भावों को मौन के अनन्य रहस्य के बीच, गहराई की तली में डूबने देने का समय आगया है।

निशा अंधकार पूर्ण है और मेरे अस्तित्व की निस्तब्धता में तुम्हारी निद्रा गहरी है।

हे प्रेम की वेदने, जागो, क्यों कि मैं द्वार उघाड़ना नहीं जानता। मैं बाहर खड़ा हुआ हूं।

घड़ियां बाट जोह रही हैं, तारे पहरा दे रहे हैं, पवन प्रशांत है और मेरे हृदय में मौन भारी हो गया है।

जागो, प्रेम जागो, मेरी खाली प्याली को परिपूर्ण कर दो और संगीत के श्वास से रजनी को झंकारमयी कर दो।

प्रात:कालीन पँखी गा रहा है।

प्रभात के आने से पूर्व ही, प्रभात शब्द उसके पास कहाँ आ आगये ? जब कि रात्रि रूपी सर्पिणी ने अभी तक आकाश को अपनी निष्ठुर और काली काली गुंजल्कों में फँसाया हुआ है।

हे प्रभात के पंखी, मुझे बताओ, आकाश और पत्तियों की कुहरी रात्रि में, प्राची से आते हुए दूत ने तुम्हारे स्वप्नों में अपना पंथ कैसे पा लिया है ?

जब तुमने पुकार कर कहा—"सूर्य आरहा है और रजनी चली गई"—विश्व ने तुम पर विश्वास नहीं किया।

हे सोने वाले, जागो।

प्रकाश के प्रथम आशीर्वाद की प्रतीक्षा करते हुए, अपने मस्तक को खोलो और उल्लास-पूर्ण विश्वास के साथ, प्रभात के पंखी के संग गीत गाओ।

मेरे अंतर में स्थित भिखारी ने अपने दुर्बल हाथ नक्षत्र-विहीन आकाश की ओर उठाये। अपनी क्षुधार्त वाणी में उसने रजनी के कानों में पुकार की।

उसकी प्रार्थनाएँ उस हृत प्रभ अंधकार के लिए थीं, जो विनष्ट आशाओं के, उजड़े हुए स्वर्ग में गिरे हुए देवता की तरह पड़ा था।

जिस प्रकार एक चिल्लाता हुआ पंखी अपने शून्य घोंसलों के चारों ओर चक्कर लगाता है।

परन्तु ज्यों ही प्रभात ने प्राची के आँचल में अपना लंगर डाल दिया, त्यों ही वह भिखारी उछल कर चिल्ला उठा—

"मैं भाग्यशाली हूँ कि बाहरी रात्रि ने यह कह कर मुझे इन्कार कर दिया कि मेरा रत्न कोष खाली है।"

वह पुनः चिल्लाया—"हे जीवन, हे प्रकाश, तुम अमूल्य हो, जिसने अन्ततोगत्वा तुम्हें जान लिया है, पहचान लिया है।"

संत सनातन गंगातीर पर बैठे अपनी माला फेर रहे थे। एक चिथरे-हाल ब्राह्मण उनके समीप आया और कहने लगा—"मेरी सहायता करो, मैं बहुत दरिद्र हूँ।"

"मेरे पास अपने भिक्षापात्र के सिवाय और कुछ नहीं है। मैंने अपना सब कुछ दिया है"—सनातन ने कहा।

"परन्तु मेरे भगवान् शिवजी ने स्वप्न में मुझे दर्शन देकर, तुम्हारे समीप जाने का आदेश दिया है"—ब्राह्मण ने कहा।

सनातन को एकाएक स्मरण हो आया कि उसे नदीतीर के कंकरों में से एक बहुमूल्य मणि मिली थी। उसे उसने रेती में छिपा दिया था कि कभी वह किसी के काम आ जायगी।

उन्होंने ब्राह्मण को वह स्थान बताया। उसने मणि खोद निकाली और विस्मय करने लगा।

ब्राह्मण भूमि पर बैठ गया और एकान्त चिंतन में निमग्न हो गया। चिंतन-मनन करते-करते संध्या का सूर्य वृक्षों के झुरमुट में छिप गया और ग्वाले अपनी गौएँ लेकर घर लौट आये।

ब्राह्मण चुपके से उठा और सनातन के समीप आकर कहने लगा--"भगवान्, मुझे अपनी उस सपदा का एक छोटे से छोटा टुकड़ा प्रदान करो, जो सारे विश्व की समृद्धि की अवज्ञा और उपेक्षा करता है।"

और उसने वह अमूल्य रत्न पानी में फैंक दिया।

☘

मैं अनेक बार अपना हाथ उठाये हुए तुम्हारे द्वार पर याचना के लिए आया, अधिकाधिक याचना के लिए आया।

तुम बराबर देते रहे। कभी थोड़ा और कभी एकाएक अधिक।

मैंने कुछ वस्तुएं ले लीं और कुछ को गिर जाने दिया, कुछ मेरे हाथ में भार बन गईं। कुछ वस्तुओं से मैंने खिलौने बनाये और उनसे ऊब जाने पर मैंने उन्हें तोड़ दिया। यहाँ तक कि उन टूटी फूटी वस्तुओं का और तुम्हारे उपहारों का इतना बड़ा अंबार लग गया कि उसने उन्हें छिपा दिया। अनन्त अभिलाषाओं ने मेरे हृदय को जर्जर बना दिया।

ले लो, ओह फिर से ले लो—अब मेरी यही पुकार हो गई है।

इस भिखारी के भिक्षापात्र की सब वस्तुएं तोड़ फोड़ दो। इस दुराग्रही पहरेदार के दीपक को बुझा दो। मेरे हाथों को पकड़ लो, उपहारों और वरदानों के अब तक एकत्र होते हुए इस ढेर पर से मुझे उठालो और अपनी भीड़-विहीन उपस्थिति के खाली असीम में ले लो।

तुमने मुझे पराजितों के बीच में लाकर रख दिया है।

मैं जानता हूँ, विजय पाना मेरे लिए शक्य नहीं है, नाही मैं खेल छोड़ सकता हूँ।

मैं इस सरोवर में कूद पड़ूँगा, चाहे मैं उसके तले में डूब जाऊँ। मैं अपने विनाश का खेल खेलूँगा।

मैं अपना सर्वस्व दाँव पर लगा दूँगा, और जब मैं अपनी अंतिम पाई तक बाजी पर लगा चुकूँगा तो स्वयं को दांव पर रख दूँगा। तब सोचता हूँ—अपने पूर्ण पराजय में भी मैं विजय पा लूँगा।

उल्लास की एक मुस्कान आकाश में फैल गई—जब तुमने मेरे हृदय को चिथरे पहना कर, मार्ग में भीख मांगने के लिये भेज दिया।

वह द्वार-द्वार पर घूमती रही और अनेक बार जब कि उसका भिक्षापात्र लगभग परिपूर्ण हो गया था, वह लुट गई।

परिश्रांत दिवस के अन्त में वह अपना दयनीय पात्र उठाये हुए, तुम्हारे राजप्रासाद के द्वार पर आ पहुंची। तुम आये, तुमने उसका हाथ पकड़ लिया और अपने समीप अपने सिंहासन पर बिठा दिया।

श्रावस्ती नगरी में भयंकर अकाल पड़ा। भगवान् बुद्ध ने अपने शिष्यों से प्रश्न किया—तुम मे से कौन-कौन भूखों को भोजन खिलाने का काम सँभाल सकते है ?

नगर-सेठ रत्नाकर का मुख नीचे ढल गया। उसने कहा—भूखों को भोजन खिलाने के लिए तो मेरे सारे धन की अपेक्षा कहीं अधिक धन की आवश्यकता है।

राजा के सेनापति जयसेन ने कहा—मैं अपने शरीर का रक्त भी प्रसन्नता से देने को तैयार हूँ, परतु मेरे घरमें पर्याप्त अनाज नहीं है। ,,

बड़े-बड़े खेतों के मालिक धर्मपाल ने आह भर कर कहा—अनावृष्टि का दानव मेरे खेतों का सब रस चूस गया है। मैं तो राजा का भूमि-कर भी नहीं चुका सकूँगा। ''

अब भिक्षुक की पुत्री सुप्रिया खड़ी हुई। सबको प्रणाम करके विनीत वाणी में उसने कहा-'' भूखों को मैं भोजन खिलाऊँगी।''

सब लोग विस्मय से बोल उठे—"तू अपना यह वचन कैसे पूरा कर सकेगी ? ''

"मैं आप सबसे गरीब हूँ" यही मेरी शक्ति है। मेरा भंडार तो आप सबके घरों में भरा पड़ा—है।"—सुप्रिया ने कहा।

☘

मैं अपने राजा से अनजान था। अतः जब उसने मुझ से महसूल की माँग की तो मैंने सोचने का दुःसाहस किया कि अपना ऋण चुकाये बिना ही मैं अपने को छुपा लूँगा।

मैं अपने दिन के कार्यों और रात्रि के स्वप्नों के पीछे भागता रहा। परन्तु उसकी मांग मेरे प्रत्येक श्वास का पीछा करती रही।

इस प्रकार मुझे ज्ञात हुआ कि मैं उससे परिचित हूँ और कोई भी स्थान ऐसा नहीं जो मेरा हो।

अब मेरी आकांक्षा है, मैं अपना सर्वस्व उसके चरणों में डाल दूँ और उसके राज्य में अपने स्थान का अधिकार प्राप्त कर लूँ।

मैंने सोचा, मैं अपने जीवन से तुम्हारी एक प्रतिमा तैयार करूँगा, जिससे मनुष्य उसकी पूजा कर सके। उसके लिए मैं अपनी धूल, अपनी कामनाएँ अपनी सारी रंगीन भ्रांतियाँ और स्वप्न ले आया।

जब मैंने तुमसे अपने जीवन की एक प्रतिमा गढ़ने को कहा, जो तुम्हारी चाह के अनुसार हो, और जिसे तुम प्रेम कर सको, तब तुम अपनी अग्नि, अपनी शक्ति और अपना सत्य, सौन्दर्य और शांति ले कर आगये।

"महाराज, संत नरोत्तम राजकीय पूजामदिर में आने के लिए बिल्कुल तैयार नहीं हुए ।"—सेवक ने राजा को सूचित किया ।

"वे खुली सड़क पर वृक्षों की छाया में भगवान् की स्तुति में गीत गा रहे हैं। मदिर पुजारियों से खाली है । जिस प्रकार मधुमक्खियां सुनहरे मधु-कलश की ओर ध्यान न देकर पुण्डरीक पुष्प के चहुँओर घिर आती हैं, उसी प्रकार लोग उनके चारों ओर एकत्र हैं ।"

मन में दुःखी होकर राजा वहां गये जहाँ नरोत्तम घास पर बैठे थे ।

राजा ने पूछा—"बाबाजी, आप मेरे सुवर्ण कलश वाले देवालय को छोड़कर बाहर धूल में बैठ कर भगवत्—प्रेम का उपदेश क्यों कर रहे हैं ।"

"क्योंकि तुम्हारे मंदिर में भगवान् नहीं है"—नरोत्तम ने उत्तर दिया ।

त्यौरियां चढ़ाकर राजा ने कहा—"क्या तुम जानते हो, इस अपूर्व कलापूर्ण मदिर को बनाने में दो करोड़ का सोना लग गया है, और बड़े वैभवपूर्ण अनुष्ठानों के पश्चात् इसमें भगवान् की प्रतिष्ठा की गई है ।"

"हां, महाराज, मैं जानता हूँ । यह उसी साल की बात है, जिस वर्ष तुम्हारी प्रजा के सहस्त्रों व्यक्तियों के घर जल कर

राख हो गये थे। वे तुम्हारे द्वार पर सहायता की याचना के लिए आये थे और उनके हाथ खाली रह गये थे।"—नरोत्तम ने कहा।

और भगवान् ने कहा—"वह तुच्छ प्राणी, जो अपने भाईयों को आश्रय नहीं दे सकता, मेरा घर बनाना चाहता है।"

और भगवान् ने राह के किनारे, वृक्षों की छाया में, आश्रय-हीन लोगों के साथ अपना स्थान बना लिया। और वह सुनहरा बुलबुला खाली है, जिसमें केवल घमंड की भाप भरी है।"

राजा ने आवेश में चिल्ला कर कहा—"मेरा देश छोड़ दो!"

शांति पूर्वक संत ने उत्तर दिया—"हाँ, मुझे वहीं निर्वासित कर दो, जहाँ तुमने मेरे प्रभु को निकाल दिया है।"

☘

तुरही धूल में पड़ी है।

वायु परिश्रांत है, प्रकाश अवसन्न है। हाय, दिन का क्या बुरा हाल है!

आओ, सुभटों, अपनी पताकाएं उठाये हुए आओ। हे चारणों, अपने युद्धगीत लेकर आओ! आओ, प्रयाण के पथिको, आओ। अपनी यात्रा वेगवती बनाओ।

तुरही धूल में पड़ी-पड़ी हमारी प्रतीक्षा कर रही है।

सायंकालीन पूजा की पुष्पांजलियाँ लेकर मैं मंदिर की ओर जा रहा था। दिन की धूल भरी थकान के बाद विश्रांति-स्थान की टोह मे था। मुझे आशा थी कि मेरे घाव ठीक हो जायेंगे और मेरे वस्त्रों के धब्बे धुलकर साफ हो जायेंगे। बस, वहीं मैंने तुम्हारी तुरही को धूल मे पड़े देखा।

क्या यह समय मेरे लिए अपना संध्या-दीप जलाने का नहीं था? क्या निशा तारों को अपनी लोरियाँ नहीं सुना रही थी?

हे रक्तवर्णी गुलाब, मेरा निद्रा का पोस्त पीला पड़ कर मुरझा गया है।

मैं निश्चिन्त था कि मेरे भटकने का अंत आ गया है और मेरे ऋण चुकाये जा चुके हैं। तभी एकाएक मैंने तुम्हारी तुरही को धूल में पड़ा-हुआ देखा।

मेरे निद्रित हृदय पर अपने यौवन के जादू से प्रहार करो !

मेरे जीवनोल्लास को अग्नि बनकर भड़कने दो। जागरण के तीरों को रात्रि के हृदय को बींधते हुए जाने दो और एक भयंकर झटके द्वारा अंधता और निष्क्रियता को झकझोरने दो।

मैं तुम्हारी तुरही को धूल से उठाने के लिए आया हूँ !

मेरी नींद अब उड़ चुकी है। मेरा प्रयाण अब तीरों की बौछारों में से है।

कुछ लोग अपने घरों से भागकर मुझ से आ मिलेंगे। कुछ लोग रोयेंगे।

कुछ अपने बिछौनों पर भयानक स्वप्न देखकर उछल पड़ेंगे और कराहने लगेंगे, क्योंकि आज निशा में तुम्हारी तुरही बजेगी।

तुमसे मैंने शांति की याचना की, केवल लज्जा पाने के लिए।

अब मैं तुम्हारे सामने खड़ा हूँ। मुझे अपना कवच पहनने में सहायता करो।

विपदाओं के कठोर प्रहारों द्वारा मेरे जीवन में अग्नि प्रकट होने दो।

तुम्हारी विजय-दुन्दुभि-रूप वेदना को मेरे हृदय में धड़कने दो।

तुम्हारी तुरही उठाने के लिए मेरे हाथ सर्वथा खाली रहेंगे।

हे सुंदर, अपने मोद में उन्मत्त होकर जब उन लोगों ने तुम्हारे चोले को मलिन करने के लिए धूल उड़ाई तो मेरा हृदय उदास होगया।

मैंने तुमको पुकार कर कहा—"अपने शासन-दड उठाओ और उन्हें सजा दो।"

रात की रंगलीलाओं से आरक्त बनी हुई उनकी आँखों पर प्रभात का प्रकाश पड़ा। कुमुद-पुष्पों की पोखरी ने उनके उष्ण श्वासो का अभिनंदन किया। पवित्र अधकार की गहराई के बीच तारे उनके मदिरा पान को ताक रहे थे—उनकी ओर, जिन्होंने तुम्हारे चोगे को मलिन करने के लिए धूल उड़ाई थी, हे सुन्दर!

तुम्हारे न्याय का आसन पुष्पवाटिका में था, बसन्त में पखियों के कल-कूजन में था; छाया-मंडित नदी-तीरों में था, जहां पर तरुपुंज तरगों के स्वरों के सगमर्मर ध्वनि कर रहे थे।

हे मेरे प्रेमी, वे अपने मद के आवेश मे निर्दय थे।

अपनी इच्छाओं को सजाने के लिए, वे अधेरे में तुम्हारे आभूषणों को लूटने की टोह मे घूम रहे थे।

उन्होंने तुम्हें पीटा और तुम्हें पीड़ा हुई तो मेरे मन को तीव्र आघात लगा और मैने पुकार कर तुम्हें कहा—"हे मेरे प्रेमी, अपनी तलवार उठाओ और उन्हे दंड दो।"

हाय, किन्तु तुम्हारा न्याय केवल जागरूक हो पाया।

एक माँ ने उनकी निठुराई पर आँसू गिराये। एक प्रेमी के अक्षय विश्वास ने उनके विद्रोही भालों को अपने निज के घावों में छिपा लिया।

तुम्हारा न्याय निद्रा-विहीन प्रेम की मौन वेदना में था, सती की लज्जा में था, किसी निःसहाय के रात्रि के अश्रुओं में था, क्षमा के मंद प्राभातिक प्रकाश में था।

हे भयंकर, वे अपने लोभ के मद में रात को तुम्हारे खजाने को लूटने के लिए तुम्हारे द्वार पर चढ़ धाये।

किन्तु उनकी लूट का बोझ बहुत बढ़ गया, इतना अधिक होगया कि उसे ले जाना या स्थानान्तर करना कठिन होगया।

इस पर मैंने तुम्हें पुकारा और कहा—"इन्हें क्षमा कर दो, हे भयंकर।"

तुम्हारी क्षमा का तूफान उन पर फूट पड़ा। उसने उनको नीचे गिरा दिया, उनकी चुराई हुई वस्तुओं को धूल में बिखेर दिया।

तुम्हारी क्षमा वज्र की गर्जना में थी, रक्त की वर्षा में थी और संध्या की क्रुद्ध लाली में थी।

भगवान् बुद्ध का भक्त भिक्षु उपगुप्त मथुरा नगरी की प्राचीर से लगकर गाढ़ी नींद में सो रहा है।

सारी नगरी के द्वार बंद हो चुके हैं। सब दिये बुझ गये हैं। श्रावण के तमोमय आकाश में सारे तारे छिप गये हैं।

पायल की मधुर झंकार वाले ये किस के चरण एकाएक साधु की छाती से टकराये।

भिक्षु चौंककर जाग उठा। एक तरुण रमणी के दीपक का प्रकाश साधु के क्षमाशील नयनों से टकराया।

यह थी एक तरुण नर्तकी, अलंकारों के कारण जगमगाती हुई, जम्बूवर्णी उत्तरी से सजी हुई और अपनी तरुणाई की मदिरा से मतवाली !

तरुणी ने अपना दीपक नीचे झुकाया। वहाँ उसने देखा—तपस्या से दमकता हुआ एक तरुण मुखड़ा !

"हे तरुण साधक, मुझे क्षमा करो ! कृपापूर्वक मेरे घर पर पधारो। यह धूल भरी धरती आपकी सेज के योग्य नहीं है।"

युवा साधक ने उत्तर दिया—"महिले, अपने मार्ग पर जाओ। समय आने पर मैं तुम्हारे समीप आ जाऊँगा।"

एकाएक बिजली की दमक में अंधियारी रजनी के दाँत दिखाई दिये। आकाश के एक छोर से तूफान गर्ज उठा। तरुणी भय से काँप उठी।

तरुपथ के विटपों की टहनियाँ मंजरियों से झूम रही थीं।

दूर से आती हुई बंसरी की उमंगभरी स्वर-लहरियाँ, बसंती बयार में तैर रही थीं। नागरिक जन वसन्तोत्सव मनाने के लिए वनों में चले गये हैं।

नीरव नगरी की छाया पर मध्याकाश में पूर्णिमा का चन्द्र झाँक रहा है।

तरुण भिक्षु एकांत राह पर चला जा रहा है। ऊपर आम्र कुंज में प्रयणातुर कोकिला अपने निद्रा विहीन करुण स्वरों में कूक रही है।

उपगुप्त नगर के द्वार पार कर गया। दुर्ग-प्राचीर की नींव के पास आकर वह खडा हो गया। दीवार की छाया में, उसके पैरों के पास महामारी से पीड़ित यह कौन नारी पड़ी हुई है? उसका शरीर छालों से भरा हुआ है। वह नगर से शीघ्र ही बाहर पटक दी गई है।

भिक्षु उसके पास बैठ गया। उसका सिर उसने अपनी गोद में रख लिया। वह उसके सूखे ओठों पर पानी सींचने लगा, उसके अगों पर चदन का लेप करने लगा।

"दयानिधान, तुम कौन हो?"—महिला ने पूछा।

"अन्त में तुमसे मिलने का समय आगया है। मैं यहाँ आगया हूँ"—तरुण तपस्वी ने उत्तर दिया।

हे मेरे प्रेमी, हम दोनों के बीच में यह केवल प्रेम-क्रीड़ नहीं है।

बारम्बार मेरे ऊपर आँधियों की चिल्लाती हुई रात्रियां झपट्टा मारते हुई आयीं और मेरा दीपक बुझा गयीं। मेरे आकाश के तारों को लुप्त करने के लिए गहरे संशय घिरते रहे हैं।

बारम्बार किनारे टूटते रहे हैं और बाढ़ ने मेरी खेतियों को बहा दिया है। क्रन्दन और नैराश्य ने मेरे आकाश को एक छोर से दूसरे छोर तक फाड दिया है।

मैंने सीखा है कि तुम्हारे प्रेम में वेदना की चोटें हैं, परन्तु मृत्यु की ठण्डी निष्ठुरता नहीं!

दीवार टूटकर टुकड़े-टुकड़े हो रही है। दिव्य हास्य की तरह प्रकाश फूट रहा है। हे प्रकाश, तुम्हारी जय हो।

रात्रि का हृदय विच्छिन्न कर दिया गया है। अपनी चमचमाती तलवार से शंकाओं और दुर्बल आकांक्षाओं के जाल के टुकड़े कर दो। तुम्हारी जय हो।

आसो हे निष्ठुर, तुम आओ, जो अपनी शुभ्रता में इतने भयंकर हो।

हे प्रकाश, तुम्हारी दुन्दुभि अग्नि की यात्रा में बज रही है। लाल-लाल मशाल ऊपर उठाई गई है। दीप्ति के प्रस्फोट में मृत्यु मरी जा रही है।

हे मेरे बंधु अग्नि, मैं तुम्हारी विजय के गीत गाता हूँ। तुम भयंकर स्वाधीनता की देदीप्यमान लाल प्रतिमा हो।

तुम आकाश में अपनी भुजाएँ हिलाते हो। तुम अपनी द्रुत-गामिनी अँगुलियाँ वीणा के तारों पर तेजी से चला रहे हो। तुम्हारा नृत्य-संगीत सुंदर है।

जब मेरे दिन समाप्त हो जायेंगे और द्वार खुल जायेंगे, तब तुम हाथपाँव के इस बंधन को भस्मसात् कर दोगे।

मेरा शरीर तुम्हारे साथ एकाकार हो जायेगा। मेरा हृदय तुम्हारी उन्मत्त भँवरों में पकड़ा जायेगा और ज्वलन्त ऊष्मा, जो मेरा जीवन था, प्रदीप्त हो उठेगी और अपने को तुम्हारी ज्वालाओं में मिला देगी।

माँझी रात में तूफानी समुद्र को पार करने लिए निकला है।

नाव का मस्तूल काँप रहा है क्योंकि उसके पाल प्रचंड झंझा से भर गये है।

रात्रि के विषदन्त से डसा गया आकाश, अंधकारमय भय से जहरीले बने हुए समुद्र पर गिर रहा है।

उत्तुंग तरंगें अपना सिर अज्ञात अंधकार से टकरा रही हैं, और माँझी विक्षुब्ध सागर को पार करने निकला है।

मैं नहीं जानता, अपने पालों की अचानक श्वेतिमा से रात्रि को चौंकाता हुआ माँझी कौन से मिलन-स्थान के लिए निकल पड़ा है।

मैं नहीं जानता, अन्त में वह किस किनारे पर उतरेगा ? उस निस्तब्ध आँगन में पहुँचने के लिए, जहाँ दीप जल रहा है। उसे पाने के लिए, जो धूल में बैठी हुई, उसकी बाट जोह रही होगी।

वह कौन सी खोज है, जिसके लिए उसकी नाव को, न तो आँधी की परवाह है, नाही अधकार की। क्या वह मणियों और मोतियों से लदी हुई है ?

आह, नहीं, मल्लाह अपने संग कोई रत्नकोष नहीं ला रहा। उसके हाथों में केवल एक श्वेत गुलाब है और ओठों पर एक गीत।

यह उसके लिए है, जो निशा में अपना दीप जलाये, एकाकी उसका पथ निहार रही है।

वह राह के किनारे एक कुटिया में रहती है। उसके बिखरे बाल हवा में उड़ते हैं और उसके नयनों को ढंक लेते हैं।

आंधी उसके जर्जर दरवाजों के बीच से चीखती है। प्रकाश उसके मिट्टी के दीपकों में, दीवारों पर अपनी परछाइयाँ डालते हुए टिमटिमाता रहता है।

झंझा के आक्रंद में वह उसे अपना नाम पुकारते हुए सुनती है—वह जिसका नाम अज्ञात है।

बहुत समय हो गया, जब नाविक नौका लेकर, यात्रा पर निकला था। अभी बहुत विलम्ब है, जब दिन निकलेगा और वह द्वार को खटखटायेगा।

ढोल नहीं बजेंगे और न कोई जान पायेगा। केवल प्रकाश घर को भर देगा। धूल धन्य हो जायगी और हृदय उल्लसित हो उठेगा। समस्त संशय नीरवता में मिट जायेंगे, जब माँझी किनारे पर आ जायेगा।

मैं अपने शरीर की जीवित नैया को अपनी पृथिवी के वर्षों के सँकरे प्रवाह में पकड़े हुए हूँ। पार कर लेने पर मैं उसे छोड़ दूँगा।

और तब ?

मैं नही जानता कि क्या वहाँ पर अधकार और प्रकाश एक ही है ?

अज्ञात एक सनातन स्वाधीनता है। वह अपने प्रेम में निष्ठुर है।

वह सीपी को तोड़ देता है, उस मोती के लिए, जो अंधकार के बंदीघर मे मूकभाव से स्थित है।

हे दीन हृदय, सोचो और विलाप करो, उन दिनों के लिए, जो बीत गये।

आनंद मनाओ कि और दिन आने का हैं। हे पथिक, वह घड़ी आ पहुँची है। अब तुम्हारे लिए मार्गों से जुदा होने का समय आ गया है। उसके मुँह का घूँघट एक बार पुन: खुल जायगा और तुम उसे मिलोगे।

भगवान् बुद्ध के अवशेसों पर राजा बिम्बिसार ने श्वेत संगमर्मर का एक सुन्दर स्मृति-मंदिर बनवाया।

वहाँ पर प्रतिदिन संध्याबेला में राज-महल की कन्याएँ और पुत्रवधुएँ पुष्पमाल्य चढ़ाने तथा दीपक जलाने आया करेंगी।

राजा का पुत्र बड़ा हुआ और गद्दी पर बैठा। उसने अपने पिता के धर्म को रक्त से धो दिया और उसके धर्मग्रंथ जलाकर यज्ञ प्रारंभ किये।

शरद् ऋतु का दिन डूबने की तैयारी में है। संध्याकालीन पूजा का समय समीप आ रहा है।

रानी की दासी श्रीमती बुद्धभगवान् की परम-भक्त थी। पवित्र जलों से स्नान करके, सोने की थाली में दीपमाला और पुष्पांजलियाँ सजा कर श्रीमती, रानी का मुँह निहारने लगी।

भय से काँप कर रानी ने कहा—" अरी मूर्ख छोकरी, क्या तुझे पता नहीं, बुद्धभगवान् के मंदिर में पूजा का दण्ड मौत है—राजा की ऐसी सूचना है।"

रानी को नमस्कार करके श्रीमती बाहर चली गई। अब वह नव परिणीता राजवधू अमिता के सम्मुख आ कर खड़ी होगई।

सोने का दर्पण राजवधू की गोद में पड़ा है। नई दुलहिन अपनी श्यामल वेणी को गूँथ रही है और अपनी माँग में सौभाग्य सिन्दूर सजा रही है।

तरुण सेविका को देखते ही दुलहिन के हाथ काँप उठे। वह चिल्ला उठी—"कौन सी भयकर विपत्ति मेरे लिए लाया चाहती है? जा, भाग जा, यहाँ से।"

राजकुमारी शुक्ला वातायन के पास बैठी है और कहानी की पुस्तक पढ़ रही है। सेविका के हाथ में पूजा की थाली निहार कर, वह चौंक उठी। उसकी पुस्तक गिर पड़ी। वह कहने लगी—"हे साहसी छोकरी, व्यर्थ ही मौत के मुँह में क्यों धँसी जा रही है?"

श्रीमती द्वार-द्वार पर भटक रही है। अपना मस्तक उठा कर वह पुकार रही है—"राज-महल की महिलाओ, जल्दी करो, भगवान् की पूजा का समय हो गया है।"

कुछ ने उसे देखते ही अपने द्वार बंद कर दिये और कुछ उसकी भर्त्सना करने लगीं।

राज-भवन के मीनारों के शिखरों से दिन की अंतिम किरणें विदा हो रही हैं। गली-कूचों में अँधेरा छा गया है। नगर में याता-यात का कोलाहल शांत हो गया है। शिवजी के मंदिर का घंटा संध्या-कालीन पूजा की सूचना दे रहा है।

निर्मल नील सरोवर की तरह गहरे शरत्कालीन संध्या के अंधेरे में तारिकाएँ प्रकाश से स्पंदित हो रही हैं।

उधर राज वाटिका के चौकीदार क्या देखते हैं? बुद्ध भगवान् की समाधि पर दीप-मालाएँ जल रही हैं।

चमचमाती तलवारें लेकर वे वहीं जा पहुँचे। धमकाते हुए वे कहने गले— 'अरी दुःसाहसी मूर्ख छोकरी, तू कौन है ?"

"मैं हूँ बुद्ध भगवान् की नम्र सेविका श्रीमती"— दासी ने कोमल स्वर में कहा।

अगले ही क्षण सगममंर की बनी हुई शीतल वेदिका सेविका के हृदय के रक्त से लाल-लाल हो गई।

तारों की प्रशांत छाया में, मदिर के वेदिका के चरणों में रक्खे गये अंतिम पूजा-प्रदीप की ज्वाला भी अवसन्न हो गई।

जो दिन तुम्हारे और मेरे बीच में खड़ा हुआ था, वह अब विदाई का अंतिम प्रयाण कर रहा है।

रजनी अपने मुखड़े पर अपना घूँघट डाल रही है और मेरे घर में जलते हुए एकाकी दीपक को छिपा रही है।

तुम्हारा सेवक अंधकार चुपके से आता है और विवाहोत्सव का गलोचा बिछा देता है, जिस पर तुम अकेले मेरे संग निःशब्द मौन में निशा की परिसमाप्ति पर्यन्त बैठे रहो।

मेरी रात्रि विषाद की शय्या पर व्यतीत हो गई। मेरी अंखियाँ परिश्रान्त हैं। आनन्द के सँभार से भरे हुए प्रभात से मिलने के लिए मेरा भारी हृदय अभी तक तैयार नहीं है।

इस उन्मुक्त प्रकाश पर एक आवरण डाल दो। इस चौंधियाने वाली कौंध को और जीवन के नृत्य को मुझ से पृथक् हट जाने को कह दो।

अपने मृदुल अन्धकार के आवरण की तहों से मुझे ढक दो। जगत् के उत्पीड़न से उत्पन्न मेरी वेदना को थोड़े समय के लिए ढक दो।

वह समय बीत गया है, जब मैं उससे जो कुछ पाया है, उसके बदले में, उसे कुछ दे सकता।

उसकी निशा ने अपना प्रभात पा लिया है और तुमने उसे अपनी भुजाओं में ले लिया है। तुम्हारे लिए मैं अपना आभार और अपने उपहार लाया हूँ, जो उसके लिए थे।

उसको दिए गए समस्त आघातों और उसके प्रति किए गए दुर्व्यवहारों के लिए तुमसे क्षमा-याचना करने आया हूँ।

मैं तुम्हारी सेवा में अपने प्रेम के वे पुष्प अर्पित कर रहा हूँ, जो कलियों के रूप में रह गए थे, जब वह उनके खिलने की प्रतीक्षा कर रही थी।

मुझे अपनी कुछ पुरानी चिट्ठियाँ उसकी पेटी में सावधानी से छिपाई हुई प्राप्त हुई। कुछ छोटे खिलौने मिले जो उसकी स्मृति में, खेलने के लिए थे।

भीरु हृदय से उसने इन तुच्छ वस्तुओं को, समय के दुर्दान्त प्रवाह से चुरा कर रखने का प्रयास किया था। और वह कहती थी—"ये केवल मेरे हैं।"

हन्त, अब इनको अपना कहने वाला कोई नहीं है, जो इनका मूल्य प्रेमपूर्ण सावधानी से अदा कर सके। फिर भी वे अब भी वहाँ हैं।

निश्चय ही, उसको पूर्णतया मिटजाने से बचाने के लिए संसार में प्रेम है, उसी प्रकार, जैसे कि उसका प्रेम था, जिसने इन चिट्ठियों को इतनी प्रेम भरी सावधानी से सुरक्षित रक्खा था।

हे नारी, मेरे उजड़े हुए जीवन में सुन्दरता और सुव्य-वस्था ले आओ, जैसे कि तुम उन्हें मेरे घर में ले आई थीं, जब तुम जीवित थी।

घड़ियों के धूल भरे टुकड़ों को साफ करदो, रिक्त पात्रों को भरदो और उन सब वस्तुओं को व्यवस्थित कर दो, जो उपेक्षित रही हैं।

तब अपने मन्दिर के अन्दर के द्वार को खोलो। दीपक जलाओ और आओ, हम मौन-भाव से अपने प्रभु के सन्मुख मिल लें।

हे मेरे स्वामी, वेदना उस समय तीव्र थी, जब तारों के स्वर मिलाए जारहे थे।

अपना संगीत प्रारम्भ करो और मुझे अपनी वेदना भूल जाने दो। मुझे उस सौन्दर्य का अनुभव करने दो, जो उन निर्दय दिवसों में तुम्हारी चेतना में था।

ढलती हुई रात, मेरे द्वार पर रुकी हुई है। उसे संगीत के साथ विदा करो।

मेरे जीवन-रूपी तारों में अपना हृदय उँडेल दो, हे मेरे स्वामी, उन गीतों में जो तुम्हारी तारिकाओं में से अवतीर्ण होते हैं।

एक पल भर के लिए बिजली की दमक में, मैंने अपने जीवन में, तुम्हारी सृष्टि की असीमता को निहारा है—भव-भव में अनेक मृत्युओं में से होकर बनती रहने वाली सृष्टि को।

मैं अपनी अयोग्यता पर रुदन करता हूँ, जब मैं अपने जीवन को निरर्थक घड़ियों के हाथों में देखता हूँ। परन्तु जब मैं जीवन को तुम्हारे हाथों में निहारता हूँ, तो समझ पाता हूँ कि वह अति मूल्यवान् है, उसे छायाओं में व्यर्थ लुटा देना उचित नहीं।

मैं जानता हूँ, किसी दिन के धूमिल अन्त में सूर्य मुझे अपना अन्तिम नमस्कार करेगा।

वटवृक्ष की छाया में ग्वाले अपनी बँसरी बजाते रहेंगे। नदी की तराई में गौएँ चरती रहेंगी, और मेरे दिन अन्धकार में चले जायेंगे।

मेरी प्रार्थना है कि अपने प्रयाण से पहले मैं यह न जान सकूँ कि धरती ने मुझे अपनी गोद में क्यों बुलाया था।

उसकी रात्रि की नीरवता मुझ से तारिकाओं की बातें क्यों बताती थी। उसके दिन का आलोक मेरे विचारों को चूम कर क्यों कर पुष्प बना देता था।

प्रस्थान से पूर्व मुझे अपनी अन्तिम गीत की टेक पर रुकने दो। उसका सङ्गीत पूरा होने दो। तुम्हारा मुख निहारने के लिए दीप जलाने दो और तुम्हें पहनाने के लिए माला गूँथ लेने दो।

☘

वह कौन सा गीत है, जिसकी ताल पर सारा ससार डोलता है ?

जब वह जीवन के शिखरों पर ताल देता है, हम हँसते हैं। जब वह अन्धकार में लौट जाता है, हम भय से कांप उठते हैं।

परन्तु खेल तो वही है, जो अन्त सङ्गीत की ताल पर आता है और जाता है।

तुम अपने खजाने को अपने हाथ की मुट्ठी में छिपा लेते हो और हम रोते हैं कि हम लुट गए।

परन्तु अपनी इच्छानुसार तुम अपनी हथेली को बन्द करो या खोलो, लाभ और हानि तो वैसी ही रहेगी।

जो खेल तुम स्वय अपने संग खेलते हो, उसमें तुम एक ही समय हारते हो और जीतते हो।

इस विश्व को मैंने अपने नयनों और अङ्गों से चूम लिया है। मैंने इसको अपने हृदयों की अनन्त तहों में लपेट लिया है। मैंने इसके दिनों और रात्रियों को विचारों से परिप्लावित कर दिया है, यहाँ तक कि विश्व और मेरा जीवन एक हो गया है·······और मैं अपने जीवन से प्यार करता हूँ, क्योंकि मैं आकाश के प्रकाश को प्यार करता हूँ, जो मेरे साथ इतना अधिक संग्रथित हो गया है।

यदि इस विश्व को छोड़ना भी उतना ही अधिक वास्तविक है, जितना उसे प्रेम करना·····तब तो जीवन में मिलने और जुदा होने का भी कोई अर्थ अवश्य होगा।

यदि वह प्रेम मृत्यु द्वारा छला जाय, तो इस छल का नासूर सब वस्तुओं को काट खायेगा और तारे मुरझा कर काले पड़ जायेंगे।

मेघ ने मुझ से कहा—"मैं विलीन होना चाहता हूँ।" रात्रि ने मुझ से कहा—"मैं प्रज्वलित उषा में डूब जाती हूँ।"

वेदना ने कहा—"मैं गहरी नीरवता में उसका चरण-चिन्ह बन कर रहती हूँ।"

मेरे जीवन ने कहा—"मैं पूर्णता में मृत्यु प्राप्त करता हूँ।"

धरती ने कहा—"मेरे प्रकाश प्रतिक्षण तुम्हारे विचारों का चुम्बन करते हैं।"

प्रेम ने कहा—"दिवस गुजरते जाते हैं, किन्तु मैं तुम्हारी प्रतीक्षा करता रहता हूँ।"

मृत्यु ने कहा—"मैं तुम्हारी जीवन-नैया को समुद्र के परले पार खेकर ले जाती हूँ।"

गोस्वामी कविवर तुलसीदास जी गहन विचारों में डूबे हुये हैं और गङ्गातीर के पर श्मशान घाट समीप घूम रहे हैं।

एक महिला अपने पतिदेव के मृत शरीर के चरणों की ओर बैठी थी। उसने सुन्दर वस्त्र धारण किये हुये हैं, जैसे कि विवाहोत्सव में पहने जाते हैं।

गोस्वामी जी के चरणों में प्रणाम करके वह कहने लगी—"महाराज, आपके आशीर्वादों के साथ मुझे अपने पतिदेव के सङ्ग स्वर्ग में जाने की आज्ञा दीजिए।"

"इतनी उतावली क्यों है बेटी, क्या यह धरती उसकी नहीं है, जिसने स्वर्ग को बनाया है ?"—गोस्वामी जी ने प्रश्न किया।

"मुझे स्वर्ग की आकांक्षा नहीं है। मुझे अपने पति चाहिये"—महिला ने कहा।

"जाओ, अपने घर को लौट जाओ, मेरी बेटी, यह महीना समाप्त होने से पूर्व ही तुम्हें अपने पति मिल जायेंगे"—गोस्वामी जी ने मुस्करा कर कहा।

प्रसन्न आशा के साथ महिला लौट गई। गोस्वामी जी प्रतिदिन उसके घर आते थे और चिंतन-मनन करने के लिए उसे अच्छे-अच्छे उपदेश सुनाते थे।

जब तक महिला का हृदय दिव्य प्रेम से परिपूर्ण नहीं हुआ, गोसांई जी उसके घर पर आते रहे।

महीना करीब करीब समाप्त हो गया था कि उसके पड़ोसियों ने आकर उससे पूछा—"क्यों बहन, क्या तुम्हारे पति मिल गए हैं ?"

"हाँ, मुझे मिल गये है"—मुस्कराकर विधवा ने उत्तर दिया।

पड़ौसियों ने विशेष उत्सुकता से पूछा—"वे कहाँ हैं ?"

"मेरे स्वामी मेरे हृदय में विद्यमान है, वे मुझसे एकाकार होगये है।"—महिला ने कहा।

☘

क्षण भर के लिये तुम मेरे समीप आई और नारी के उस महान् रहस्य से तुमने मेरा स्पर्श किया, जो सृष्टि के हृदय में निहित है।

वह नारी जो कि भगवान् को उसके अपने ही माधुर्य का प्रवाह बराबर लौटाती रहती है।

वह प्रकृति की नित्य नूतन सुन्दरता और तरुणाई है।

वह उछलती हुई धाराओं में नृत्य करती है और प्रभात के प्रकाश में गाती है।

वह जो उमड़ती हुई लहरों द्वारा प्यासी धरती को तृप्त करती है।

उसमें वह शाश्वत 'एक' विभक्त होकर 'दो' होगया है। वह आनन्दमय जो अब अपने को सँभाल नहीं पाता और प्रेम की वेदना में छलक उठता है।

वह कौन है, जो मेरे हृदय में निवास करती है ? वह नारी जो सदा के लिए परित्यक्ता है।

मैंने उससे प्रेम-याचना की, पर उसे जीतने में मैं विफल रहा।

मैंने उसे फूलमालाओं से सजाया, उसकी प्रशंसा के गीत गाये।

उसके मुखड़े पर पलभर के लिये एक मुस्कान चमकी और फिर मुरझा गई।

वह रो पड़ी ! खिन्न होकर उसने कहा—"मैं तुमसे प्रसन्न नहीं हूँ।"

मैं उसके लिए रत्न-जटित पायल मोल ले आया। उस पर हीरों से मण्डित पंखे डुलाये। उसके लिये सोने के पायों वाला पलंग बनवाया।

उसके नयनों में प्रसन्नता की एक किरण चमक उठी और फिर वह अवसन्न होगई !

"मैं तुमसे प्रसन्न नहीं हूँ।"—वह रो पड़ी, खिन्न नारी !

मैंने उसे विजय के रथ पर बिठाया और उसे धरती के क छोर से दूसरे छोर तक घुमा लाया।

जीते हुये हृदय उसके चरणों में झुक गये। प्रशंसा के निर्घोषों से गगन गूँज उठा।

पलभर के लिये उसके लोचनों में गर्व चमक उठा और फिर वह अश्रुओं में धूमिल हो गया।

"मुझे विजय में कोई प्रसन्नता नहीं।" खिन्न नारी रो पड़ी।

मैंने उससे पूछा—"मुझे बताओ, तुम किसे खोजती हो ?"

उसने केवल इतना कहा—"मैं उस अज्ञात नाम वाले की प्रतीक्षा में हूँ।"

दिन बीतते जाते हैं और वह रोकर कहती है—"मेरा प्रियतम कब आयेगा, जिससे मैं अनजान हूँ, और कब वह सदा के लिये मेरा परिचित हो जायगा।"

☘

तुम्हारा ही प्रकाश अंधकार से फूट निकलता है। तुम्हारा मांगल्य, विदीर्ण हृदय के संघर्ष से प्रकट होता है।

तुम्हारा यह घर है, जो संसार की ओर खुलता है। तुम्हारा प्रेम समर-भूमि की ओर बुलाता है।

तुम्हारा यह वरदान है, जो तब भी एक उपलब्धि है, जब सब कुछ खो जाता है। तुम्हारा दिया हुआ यह जीवन है, जो मृत्यु की कन्दराओं में से होकर जाता है।

तुम्हारा यह स्वर्ग है, जो सामान्य धूल में पड़ा है, और वहाँ तुम मेरे लिये हो, तुम वहाँ सबके लिये हो।

जब मार्ग की श्रांति और सतप्त दिवस की पिपासा मुझ पर रहती है, जब संध्या समय की भुतई (भूत सी) घड़ियाँ मेरे जीवन पर अपनी छाया डालती है, त हे मेरे मित्र, मैं केवल तुम्हारी आवाज के लिये ही आर्तनाद नहीं करता, परन्तु तुम्हारा स्पर्श पाने के लिये !

अपनी उन समृद्धियों के बोझ के कारण, मेरे हृदय में व्यथा भरी पड़ी है, जिन्हें मैं तुम्हें नहीं दे पाया हूँ।

रात्रि के बीच में से अपना हाथ बाहर निकालो, मुझे उसे पकड़ने दो, उसे भरने दो और रखने दो। मुझे अपने एकाकी-पन के लम्बे फैलाव में, उसके संस्पर्श का अनुभव करने दो।

कलिका में बैठी रभि आह भर रही है—" हाय, दिन बीता जा रहा है, वसन्त का आनंदमय दिन ! और मैं पंखड़ियों की कैद में पड़ी हूँ ।"

हे भीरू, हृदय मत हारो ।

तुम्हारे बंधन टूट जायेंगे । कली कुसुम में खिल उठेगी. और जब तुम जीवन की परिपूर्णता में अवसन्न हो जाओगी तब भी वसन्त जीवित रहेगा ।

सुरभि कली में तड़पती फड़फड़ाती है और चिल्लाती है—" हाय, घड़ियाँ बीती जा रही हैं, फिर भी मुझे पता नही, मैं कहाँ जा रही हूँ और किसे खोज रही हूँ ।"

हे भीरू हृदय, हिम्मत न हारो ।

बसंती बयार ने तुम्हारी अभिलाषा को सुन लिया है । जब-तक तुम अपने व्यक्तित्व की परिपूर्णता को नहीं प्राप्त कर लोगी, तबतक दिवस का अवसान नहीं होगा !

उसका भविष्य अंधकार मय है और सुरभि निराशा से कलप उठती है—" हाय, किसके अपराध से मेरा जीवन इतना अर्थ शून्य है ?" मुझे कौन बता सकता है कि आखिर मेरा अस्तित्व ही क्यों है ?"

भीरू हृदय, हिम्मत न हारो ।

परिपूर्ण अरुणोदय समीप है, जब तुम अपने जीवन को, संपूर्ण जीवन के साथ मिला दोगी और अन्त में, अपने उद्देश्य को जान लोगी !!

☙

मेरे स्वामिन्, वह अभी एक बच्ची है। वह तुम्हारे महल के चारों ओर दौड़ती है, खेलती है और तुमको भी क्रीड़ा की वस्तु बनाने का प्रयत्न करती है।

उसके बाल नीचे आ जाते हैं और उसके अस्त-व्यस्त कपड़े धूल में गिरते पड़ते हैं—इसकी उसे कुछ परवाह नहीं है।

वह सो जाती है, तब तुम उससे बात करते हो, और वह उत्तर नहीं देती। और वह फूल, जो तुम उसे प्रभात में देते हो, उसके हाथ से खिसक कर धूल में गिर जाता है।

जब तूफान फट पड़ता है और आकाश में अंधकार छा जाता है, तब उसकी नींद खुल जाती है। उसकी गुडिया धरती पर गिर जाती है और वह डर के मारे तुमसे चिपट जाती है।

उसे भय है कि वह कहीं तुम्हारी सेवा में असफल न रहे। किन्तु, तुम एक मुस्कान के साथ उसका खेल निहारते रहते हो।

उसे तुम जानते हो।

धूल में बैठी हुई वह बालिका, भविष्य में होने-वाली तुम्हारी दुलहिन है। उसकी क्रीड़ाएँ शांत होकर प्रेम की गहराई में मिल जायेगी।

"हे सूर्यदेव, आकाश के सिवाय ऐसा कौन है, जो तुम्हारी प्रतिमा को थाम सके ?"

ओस की बूँद ने रोकर कहा—"हे महान् स्वामी, मैं तुम्हारा स्वप्न देखती हूँ, परन्तु, मुझे तुम्हारी सेवा करने की कोई आशा नहीं है। मैं इतनी छोटी हूँ कि तुम्हें अपने में नहीं ले सकती। मेरा सारा जीवन अश्रुओं का है।"

इस पर सूर्य ने कहा—"मैं असीम आकाश को प्रकाशित करता हूँ, तथापि मैं अपने आपको एक नन्हीं सी ओसबिन्दु को दे सकता हूँ। मैं प्रकाश की एक चिनगारी बन जाऊँगा और तुम्हें भर दूँगा। तुम्हारा नन्हा-सा जीवन एक हँसता हुआ गोला बन जायगा।

संयम-विहीन प्रेम मुझे नहीं चाहिए—जो फेनिल मदिरा की तरह, उफन कर पलभर में अपने पात्र को तोड़ कर व्यर्थ ही बह जाता है।

मेरे लिए शीतल और पवित्र प्रेम भेजो, जो तुम्हारी वर्षा तरह [illegible]यरी पृथिवी को प्रमुदित करता है और घर के मिट्टी के घड़ों को भरता है।

मुझे वह प्रेम प्रदान करो, जो व्यक्तित्व के केन्द्र को तर कर दे और वहाँ से अदृश्य रस की तरह, जीवन रूपी वृक्ष की शाखा-प्रशाखाओं में फैलता हुआ, फूलों और फलों को उत्पन्न करे।

मुझे वह प्रेम प्रदान करो, जो शान्ति की पूर्णता के साथ हृदय को शांत रखता है।

पश्चिम दिशा में, सरिता के तीर पर कानन की सघन तरूराजि में सूर्य अस्त हो गया है।

तपोवन के बटु अपने गौओं को लौटा लाये हैं। वे गुरू-वर गौतम से उपदेश सुनने के लिए होमाग्नि के चहुँ ओर बैठ गये हैं। उसी समय आश्रम में एक अजनबी कुमार ने प्रवेश किया। गुरू गौतम के चरणों में प्रणाम करके उसने कुछ फलफूल उपहार में प्रस्तुत किये। मृदुल स्वरों में उसने कहा—"महाराज, मैं परम सत्य का मार्ग पाने की अभिलाषा से आपके समीप आया हूँ। मेरा नाम है—सत्यकाम।"

बालक के शीश को आशीर्वाद से अभिषिक्त करते हुए गुरू ने कहा—"तात, तुम किस वंश के हो? उच्चतम ज्ञान पाने का अधिकार तो केवल ब्राह्मण को ही है?"

"भगवन्, मुझे तो अपने वंश का कुछ पता नहीं। मैं अपनी माता से पूछ कर आता हूँ।"—बालक ने उत्तर दिया।

गुरू जी अनुमति पाकर सत्यकाम नदी की उथली जल-धारा पार करके, अपनी माँ की कुटिया के समीप आ पहुंचा। वह कुटिया ऊँघते हुए गाँव के किनारे बालुका—तीर पर स्थित थी।

कुटी में मन्द प्रकाश से दीप जल रहा था। द्वार पर बालक की मां उसके लौटने की प्रतीक्षा में खड़ी थी।

माता ने पुत्र को छाती से लगा लिया। उसके शीश का चुम्बन लेकर उसने पूछा—"गुरू ने क्या कहा।"

बालक कहने लगा—" मेरे पिता जी का क्या नाम है, प्यारी मैया ? उच्चतम विद्या पाने का अधिकार तो केवल ब्राह्मण को ही है, गौतम महाराज ने मुझे ऐसा कहा है।"

माता के नयन नीचे झुक गये। वह अस्फुट स्वर में कहने लगी—"अपनी तरुणाई के दिनों में मैं बहुत गरीब थी। मैंने उन दिनों अनेक मालिकों की सेवा की। उन्हीं दिनों हे मेरे प्यारे, तू अपनी माता जबाला की गोद में आया था। तेरे पिता जी का कुछ पता नहीं।"

तपोवन के तरुशिखरों पर अरुणोदय की तरुण किरणें झिलमिला रही हैं। प्रातः कालीन स्नान से निवृत्त होकर शिष्य गण गुरू जी के सामने पुराने आम्रवृक्ष की छाया में बैठे हुए हैं। सद्यः—स्नात शिष्यों की जटाएँ अभी तक गीली हैं।

इसी समय सत्यकाम वहाँ प्रविष्ट होता है। गुरू-चरणों में प्रणिपात करके वह चुपचाप खड़ा हो जाता है।

"कहो तात, तुम्हारा जन्म किस वंश में हुआ है ?"—आचार्य ने पूछा।

"महाराज, मुझे इसका कुछ पता नहीं, अपनी माता से पूछने पर उसने मुझे कहा है—"अपने यौवन के दिनों में मैंने कई मालिकों की सेवा की थी। उन्हीं दिनों अपनी माता जबाला की गोद में तू अवतीर्ण हुआ था। तेरे पिता जी का कुछ पता नहीं।"

मधुछत्ते पर प्रहार होने पर जिस प्रकार मधुमक्षिकाएँ भिनभिना उठती हैं, उसी प्रकार बटुवृन्द अपनी गुनगुनाहट में जाति-हीन सत्यकाम की लज्जाहीन प्रगल्नतों का उपहास करने लगा।

आचार्य गौतम अपने आसन से उठे। अपनी भुजाएँ फैला कर उन्होंने सत्यकाम को छाती से लगा लिया और कहने लगे—"हे मेरे वत्स, तुम सब ब्राह्मणों से श्रेष्ठ हो, तुम्हें सत्य का महनोय-तम उत्तराधिकार प्राप्त है।

इसी समय आम्र कुँज मे कोकिल का बोल सुनाई दिया! आश्रम में एक नये छात्र की वृद्धि हुई!

☘

संभव है, इस नगर में एक घर हो, जिसके द्वार आज इस प्रभात में अरुणोदय के आलोक से सदा के लिए खुल गये हों। जहाँ प्रकाश का संदेश पूर्ण हो गया हो।

उपवनों और झुरमुटों में पुष्प खिल रहे हैं। संभव है, वहाँ एक ऐसा भी हृदय हो, जिसने उन पुष्पों में, आज इस प्रभात में, वह उपहार पा लिया हो, जो अनन्त काल से अपनी यात्रा पर चला आ रहा है।

सुनो, मेरे हृदय, उसकी बाँसुरी में, वनपुष्पों का सौरभ है ! चमकती हुई पत्तियों का, झिल मिल करते हुए जलों का और मधु मक्खियों की झंकार से भरी छायाओं का संगीत है।

बाँसुरी मेरे मित्र के अधरों से उसकी मुस्कान को चुरा 'से जीवन पर फैला देती है।

तुम सदा ही, मेरे गीतों की धारा के उस पार, एकाकी रूप में खड़े रहते हो।

मेरे गीतस्वरों की लहरियां तुम्हारे चरणों को पखारती हैं। परन्तु, मैं नहीं जानता कि उन चरणों तक मैं कैसे पहुँचूं ? तुम्हारे साथ मेरी यह क्रीड़ा एक दूर की क्रीड़ा है।

वियोग की वेदना मेरी मुरली के मधुर संगीत में घुल जाती है।

मैं उस समय की प्रतीक्षा कर रहा हूँ जब तुम्हारी नैया, मेरे किनारे पर आ लगेगी और तुम मेरी मुरली को अपने हाथो में ले लोगे।

मेरे हृदय की खिड़की आज इस प्रभात में एकाएक खुल गई—वह खिड़की जो तुम्हारे हृदय की ओर निहारती है।

मैं यह निहार कर विस्मित होगया कि जिस नाम से तुम मुझे जानते हो, वह वसन्त के पल्लवों और प्रसूनों पर अंकित है। मैं चुपचाप बैठ गया।

पल भर के लिए मेरे गीत और तुम्हारे गीत के बीच की यवनिका उठ गई।

मैंने देखा कि तुम्हारे प्रभात का आलोक मेरे ही मूक और अनगाये गीतों से परिपूर्ण है। मैं सोचने लगा, मैं उन्हें तुम्हारे चरणों मे बैठ कर सीखूँगा—और मैं चुपचाप बैठ गया।

☘

तुम मेरे हृदय के केन्द्र में थे, अतः वह भटकता रहा और उसने तुमको कभी नहीं पाया। तुमने मेरी प्रीति और आशाओं से अपने को अन्त तक छिपाये रक्खा, क्योंकि तुम सदा ही उनमें विद्यमान थे।

मेरी तरुणाई की क्रीड़ा में तुम अन्तरतम आनन्द के रूप में विद्यमान थे, और मैं अपनी क्रीड़ा में निमग्न था। वह आनंद समीप होकर चला गया।

मेरे जीवन के हर्षोन्माद में तुमने मेरे लिए गाया, किन्तु मैं तुम्हारे लिए गाना भूल गया।

जब तुम अपना कंदील, आकाश में ऊपर उठाते हो, तब वह अपना आलोक मेरे चेहरे पर डालता है और उसकी परछाई तुम्हारे ऊपर पड़ती है।

जब मैं प्रेम का प्रदीप अपने हृदय में उठाता हूँ, तो उसका प्रकाश तुम्हारे ऊपर पड़ता है और मैं परछाई में, पीछे खड़ा रह जाता हूँ।

तरंगें, आकाश को निगल जाने वाली तरगें, प्रकाश से जगमगाती हुई, जीवन-शक्ति से नृत्य करती हुई, उद्वेल्लित हर्ष की तरंगें, सदा तेजी से आगे-आगे बढ़ रही हैं।

तारिकाएं उन पर झूला झूलती हैं। रंग-रंग के विचार गहराई से ऊपर फेंके जाते हैं, और जीवन के तीर पर बिखेर दिये जाते हैं।

जन्म और मरण उसकी ताल के साथ उठते हैं और गिरते हैं। और मेरे हृदय का समुद्री पक्षी उल्लास से शोर मचाता हुआ अपने पङ्ख फैला रहा है।

अखिल विश्व का आनन्द उसके शरीर का निर्माण करने के लिए दौड़ पड़ा।

गगन-मडल की ज्योतियाँ बराबर उसका चुम्बन करती रहीं, जब तक वह जाग न उठी।

भागते हुए वसन्तकालीन पुष्पों ने उसके श्वासों में आहें भर दीं। समीर और सलिल की ध्वनियाँ उसके स्पदनों में गाने लगीं।

बादलों और वनों के रगों के उभार का उन्माद उसके जीवन में बह आया। सब पदार्थों के सङ्गीत ने उसके अङ्गों को, दुलार-भरे चुम्बनों द्वारा स्वरूप प्रदान किया।

वह मेरी वधू है—उसने मेरे घर में अपना दीपक जलाया है।

अपने पल्लवों और प्रसूनों के सङ्ग वसन्त मेरे शरीर में समा गया है।

मधुमक्खियां वहां पर प्रभात में देर तक गुंजार करती रहती हैं। हवाएं छाया के साथ अलसभाव से खेलती रहती हैं।

एक सुमधुर फुआरा मेरे हृदय के अन्तस्तल से फूट पड़ा।

तुषारस्नात प्रभात की तरह मेरे नयन उल्लास से धुल गये। वीणा के बजते हुए तारों की तरह, मेरे अङ्ग अङ्ग में जीवन स्पन्दित हो रहा है।

हे मेरे अनन्त दिनों के प्रेमी, क्या तुम एकाकी ही मेरे जीवन के तीर पर घूम रहे हो, जहाँ पर तरंगें प्लावित हो रही हैं ?

रङ्ग-बिरङ्गी पङ्खों वाले जुगनुओं की तरह क्या मेरे स्वप्न तुम्हारे चहुं ओर उड़ रहे हैं ?

और क्या वे तुम्हारे गीत हैं, जो मेरे अस्तित्व की गहरी गुहा में प्रतिध्वनित हो रहे हैं ?

तुम्हारे सिवाय ऐसा कौन है, जो सकुल घड़ियों के उस गुंजन को सुन सकता है, जो आज मेरी धमनियों में ध्वनित हो रहा है। वे उल्लसित चरण, जो मेरे हृदय में नाच रहे है। अशांत जीवन का वह कोलाहल, जो मेरे शरीर में अपने पङ्ख फड़फड़ा रहा है।

मेरे बन्धन कट चुके है। मेरे ऋण चुकाये जा चुके हैं। मेरा द्वार खुल गया है। मैं सर्वत्र जा सकता हूँ।

वे अपने कोने में दुबके हुए हैं, और निप्रभ क्षणों (घड़ियों) का जाल बुनते रहते हैं। वे धूल में बैठे-बैठे अपने रुपये गिनते रहते हैं और मुझे वापिस बुलाते हैं।

परन्तु मेरी तलवार तैयार हो गई है। मैंने कवच धारण कर लिया है। मेरा घोडा दौडने को उत्सुक है।

मैं अपने राज्य को जीत लूंगा।

☘

अभी उस दिन की बात है, मैं तुम्हारी इस धरती पर आया था। तब मै नग्न और नाम रहित था और क्रन्दन कर रहा था।

आज मेरे बोल आनन्द से भर उठे हैं, जबकि हे मेरे स्वामी, तुम मेरे लिए स्थान छोड़कर, एक ओर हट गये हो, जिससे मैं अपने जीवन को भर सकूँ।

जब मैं तुम्हारी अर्चना के लिए अपने गीत लाता हूँ, तब मुझ मे एक गुप्त आशा छिपी रहती है कि लोग आयेगे और उन गीतों के लिए मुझे प्यार करेंगे।

तुम्हें यह प्रकट करने में आनन्द आता है कि मैं इस जगत् को प्यार करता हूँ, जहाँ तुम मुझे ले आये हो।

☘

भीरु बनकर मैं सुरक्षा की छाया में दुबका रहा। परन्तु अब, जब कि आनन्द की त ग मेरे हृदय को, अपने शिखर पर पहुँचा रही है, मेरा हृदय अपनी व्यथा की निष्ठुर चट्टान से चिपट रहा है।

मैं अपने घर के एक कोने में एकाकी बैठा था—यह सोचते हुए कि वह किसी भी अतिथि के लिए बहुत छोटा है। किन्तु अब जब उसका द्वार एक अज्ञात आनन्द से एकाएक खुल गया है, मैं देखता हूँ, उसमें तुम्हारे लिए और सारे संसार के लिए पर्याप्त स्थान है।

सुसज्जित और सुवासित होकर, अपने व्यक्तित्व के प्रति खूब सावधान होकर, मैं चुपके से चलता रहा—किन्तु अब जब एक आनन्द भरी आँधी ने मुझे धूल में गिरा दिया है, मैं हँसता हूँ और धरती पर तुम्हारे चरणों में, एक शिशु की तरह लुढ़क रहा हूँ!

विश्व आज के लिए, और सदा के लिए तुम्हारा है।

और क्योंकि तुम्हें कोई आवश्यकता नहीं है, हे मेरे राजा, तुम्हें अपनी संपदा में कोई प्रसन्नता नहीं है।

वह ऐसा ही है, जैसे वह है ही नहीं। इसलिए, मंथरगति वाले समय में, तुम मुझे वह देते रहते हो, जो तुम्हारा है और इस प्रकार तुम निरन्तर में अपना राज्य जमाते रहते हो।

दिन प्रतिदिन तुम मेरे हृदय से अपने सूर्योदय को खरीदते हो और इस प्रकार, मेरे जीवन की प्रतिमा में तुम अपने प्रेम को अंकित हुआ हुआ पाते हो।

पंक्तियों को तुमने गीत दिये, बदले में उन्होंने तुम को गीत दिये।

तुमने मुझे वाणी प्रदान की, तो भी मुझसे अधिकाधिक की याचना की और मैं गाता हूँ।

तुमने अपने पवनों को हल्का बनाया है और वे अपनी सेवामें वेगवंत हैं। तुमने मेरे हाथों को भारी बनाया, जिससे मैं उन्हें हल्का कर सकूँ और अन्त में तुम्हारी सेवा के लिए भार-विहीन स्वाधीनता पा सकूं।

तुमने अपनी धरती बनाई और उसकी छायाओं को तुमने प्रकाश के कणो से भर दिया।

वहाँ तुम रुक गये। तुमने मुझे खाली हाथ धूल में छोड़ दिया, अपना स्वर्ग बनाने के लिए।

अन्य सभी वस्तुओं के लिए तो तुम प्रदान करते हो और मुझ से माँगते हो !

मेरे जीवन की खेतियाँ धूप और वर्षा में पकती हैं। जब

तक कि जितना तुमने बोया था, उससे अधिक काट लेता हूँ। हे सुनहरे अन्न भन्डार के स्वामी, इससे तुम्हारा हृदय प्रसन्न होता है !!

भयों से रक्षा पाने की प्रार्थना मैं नहीं किया चाहता, परन्तु, उनका मुकाबला करने के लिए, निर्भय होने की प्रार्थना करता हूँ।

अपनी व्यथा—वेदनाओं को दूर करने की प्रार्थना नहीं करता, परन्तु उन पर विजय पाने के लिए, हृदय-बल की याचना करता हूँ।

अपने जीवन की समर-भूमि में मुझे साथियों की खोज नहीं है, मुझे तो अपनी ही शक्ति की चाह है।

चिन्ता-पूर्ण भय से रक्षा पाने की मेरी चाह नहीं है। मैं तो अपनी स्वाधीनता पर विजय पाने के लिए धैर्य की आशा करता हूँ।

मुझे वह भावना प्रदान करो कि अपनी सफलता में तुम्हारी कृपा का अनुभव करते हुए मैं कायर न बन जाऊँ। प्रत्युत्, अपनी विफलता में भी तुम्हारे हाथ का अवलम्ब पा सकूँ।

तुम अपने आपको नहीं जानते थे, जब तुम एकाकी थे और तुमको किसी कार्य की बुलाहट नहीं थी, जब पवन यहाँ से उस सुदूर किनारे तक दौड़ती थी।

मैं आया और तुम जागे और गगन ज्योति से जगमग जगमग हो उठा।

तुमने मुझे अनेक पुष्पों में पुष्पित कर दिया। अनेक रूपों भूलों में मुझे झुलाया। मुझे मृत्यु में छिपा दिया और पुनः जोवन में पा लिया।

मैं आया और हृदय उद्वेलित हो उठा। तुम्हारे लिए विषाद और हर्ष आया।

तुमने मेरा स्पर्श किया और तुम प्रेम से रोमांचित हो उठे।

परन्तु मेरे नयनों में लज्जा का आवरण है। मेरे हृदय में भय का कंपन है। मेरा मुख ढका हुआ है और मैं तुम्हें देख नहीं पाता तो रोता हूँ।

तो भी मैं तुम्हारे हृदय की अनन्त प्यास को पहचानता हूँ—जो मुझे देखने के लिए है, वह अमिट प्यास जो मेरे द्वार पर वारंबार अरुणोदय की खटखटाहट में पुकारती है !!

अपनी असीम निगरानी में तुम, निकटतर आते हुए मेरे कदमों की आहट सुनते हो। तुम्हारी प्रसन्नता प्रातः काल के झुटपुटे में एकत्र होकर, प्रकाश में फूट पड़ती है।

जितना ही मैं तुम्हारे समीप आता हूँ, उतना ही समुद्र के नृत्य का उन्माद गहरा होता जाता है।

तुम्हारी विश्व, प्रकाश की अनेक धाराओं वाला फुआरा है। परन्तु तुम्हारा स्वर्ग तो मेरे रहस्य पूर्ण हृदय में है, वह अपनी कलिकाएँ लजीले प्रेम में शनैः शनैः खोलता है।

अपने मौन विचारों की छाया में, एकाकी रूप में बैठा हुआ मैं तुम्हारा नाम उचारूँगा।

बिना किसी प्रयोजन के मैं उस नाम को, बिना शब्दों के उचारूँगा।

क्योंकि मैं एक शिशु की तरह हूँ, जो अपनी माँ को सैंकड़ों बार बुलाता है, इस उल्लास से कि वह "माँ" कह सकता है।

(क)

मैं अनुभव करता हूँ कि समस्त तारे मेरे अन्तर में चमकते हैं।

जगत् मेरे जीवन में एक जल प्रभाव की तरह फूट पड़ता है।

मेरे शरीर में पुष्प खिलते हैं। धरती और पानी का समस्त यौवन मेरे हृदय में धूप की तरह जलता है। सब पदार्थों के प्राण- मेरे विचारों पर उसी प्रकार बजते हैं, जिस प्रकार एक बंसरी पर।

(ख)

जब संसार सोता है, मैं तुम्हारे द्वार पर आता हूँ। तारे चुप हैं और मैं गति से डरता हूँ।

मैं प्रतिज्ञा करता हूँ और देखता हूँ, जब तक तुम्हारी छाया रात्रि के छज्जे से होकर चली जाती है और मैं परिपूर्ण हृदय के साथ लौट आता हूँ।

तब प्रभात में राह के किनारे गाता हूँ। झुरमुट के पुष्प मुझे उत्तर देते हैं और प्रभात का पवन सुनता है।

पथिक जन एकाएक रुक जाते हैं, मेरे मुख को निहारते हैं—यह सोचकर कि मैंने उन्हें नाम लेकर पुकारा है।

(ग)

सदा तुम्हारी आकांक्षाओं का अनुकरण करने के लिए मुझे

अपने द्वार पर रख लो। तुम्हारी पुकार को स्वीकार करके, मुझे अपने राज्य में घूमने दो।

मुझे शिथिलता की गहराई में डूबने और नष्ट होने से बचाओ।

मेरे जीवन को व्यर्थ व्यय की दरिद्रता से चिथड़े-चिथड़े मत होने दो।

उन संशयों से और विकलता की धूल से मुझे मत घिरने दो।

मुझे अनेक रास्तों पर अनेक वस्तुएँ एकत्र करने के लिए मत जाने दो।

मुझे अपने हृदय को अनेकों के बोझ से मत झुकने दो।

तुम्हारा सेवक होने के उत्साह और अभिनय में मुझे अपना मस्तक ऊँचा रखने दो।

☘

क्या तुम दूर से मृत्यु को कोलाहल ध्वनि सुनते हो? अग्नि के उफानों और जहरीले मेघों के बीच में उस ध्वनि को सुनते हो?

खिवैयों के लिए जहाज को अज्ञात की ओर घुमाने के लिए कप्तान की पुकार सुनते हो? क्योंकि समय बीत गया है—बन्दरगाह पर अवरुद्ध हुआ हुआ समय।

जहाँ वही पुरानी बिक्री की वस्तुएं एक अन्तहीन चक्कर में खरीदी जाती हैं और बेची जाती हैं। जहाँ निर्जीव वस्तुएँ भ्रांति और समय के खाली-पन में घूमती रहती हैं।

एकाएक भय से वे जाग उठते हैं और पूछते हैं—"साथिओ, क्या समय है ? प्रभात का आरम्भ कब होगा ?"

मेघों ने तारों को विलुप्त कर दिया है। वहाँ कौन है, जो अब दिन का संकेत करने वाली अंगुलियों को देख सकता है ?

वे हाथ में पतवार लिए दौड़ पड़े। शय्याएं खाली हैं, माँ प्रार्थना करती है और गृहिणी द्वार पर निहार रही है। वियोग का आक्रन्द आकाश में फैल रहा है।

और वहाँ अन्धकार में कप्तान की पुकार सुनाई देती है—"आओ नाविको, क्योंकि बन्दरगाह पर रहने का समय बीत चुका है।"

जगत् के काले दुष्कर्म किनारों को तोड़ कर फैल गये हैं। तो भी हे मल्लाहो, अपने अन्तरात्मा में दुख का वरदान लेकर अपने स्थानों पर जम जाओ।

भाइयो, तुम किसे उपालंम्भ देते हो ? अपने मस्तक नीचे झुकाओ ! पाप हमारा तुम्हारा सभी का है।

युगों से भगवान् के हृदय में अग्नि बढ़ रही है—

निर्बल की कायरता, शक्तिकाली की उद्दण्डता, विपुल समृद्धि की लिप्सा, अपराधी की ईर्ष्या, जाति का अहंकार और मानव का अपमान—इन सबने प्रभु की शान्ति को नष्ट कर दिया है। वह आंधी में उग्र हो उठा है।

परिपक्व फली की तरह, तूफान की गर्जना के साथ अपने हृदय के खण्ड-खण्ड कर लेने दो।

निंदा और आत्मस्तुति के अपने दुर्दाना आवेग को बन्द करो और मौन प्रार्थना की शान्ति को अपने ललाट पर धारण करके अज्ञात किनारे की ओर नाव खेना प्रारम्भ करो।

पापों और दुष्कर्मों को हम प्रतिदिन जानते हैं। मृत्यु को भी हम जानते हैं।

हमारे जगत् पर वे बादलों की तरह गुजरते हैं। क्षण भर की बिजली की हंसी द्वारा वे हमारा उपहास करते हैं।

वे एकाएक रुक गये हैं। वे कुतूहल और विस्मय का विषय बन गये हैं।

मनुष्यों को उनके समक्ष डटकर खड़ा होना होगा और कहना होगा—

हे दानव, हम तुमसे नहीं डरते, क्योंकि प्रतिदिन तुम पर विजय पाकर हम जीवित रहते हैं और हम इस विश्वास से मरते हैं कि शान्ति सत्य है, भद्रता सत्य है, और सत्य ही "वह" शाश्वत है।

यदि अमरत्व मृत्यु के हृदय में निवास न करे, यदि प्रमुदित ज्ञान, दु:ख के आवरण को तोड़कर प्रस्फुटित न हो, यदि पाप अपने को प्रकट करके नष्ट न हो जाय, यदि गर्व अपने शृंगार के बोझ के नीचे ही टूट न जाय,

तो फिर वह आशा कहाँ से आयेगी, जो आशा प्रभात के प्रकाश में मरने के लिए दौड़ते हुए तारों की तरह, इन मनुष्यों को अपने घरों से निकाल कर मौत की ओर ले जाती है?

क्या हतात्माओं के रुधिर और माताओं के अश्रुओं का मूल्य धरती की धूल में विलीन हो जायेगा ? क्या वह अपने मूल्य से स्वर्ग को नहीं मोल लेगा ?

और जब मानव अपने नश्वर बंधनों को तोड़ देगा, तो क्या असीम उस क्षण में प्रकट नहीं हो जायेगा ?

मैं सड़क के किनारे खड़ा हूँ और मेरे स्वामी ने मुझे पराजय का गीत गाने की आज्ञा दी है, क्योंकि वही उसको वधू है, जिससे वह एकांत में प्रेम करता है।

भीड़ से अपना मुख छिपाने के लिए उसने काला घूंघट ओढ़ा हुआ है। परन्तु अन्धकार में उसके वक्ष स्थल का रत्न चमक रहा है।

वह दिवस द्वारा परित्यक्त है। प्रभु की रात्रि, अपने दीप जलाकर और अपनी ओसभीनी पुष्पांजलियाँ लेकर उसकी प्रतीक्षा कर रही है।

अपने नयन झुकाये वह मौन है। अपना घर उसने पीछे छोड़ दिया है। उसके घर से वायु के आक्रन्द की ध्वनि आ रही है।

परन्तु तारे चिरंतन का प्रेम-गीत गा रहे हैं, उस मुख के लिए जो लज्जा और व्यथा से मधुर हो गया है।

सुनसान कमरे का द्वार खुल गया है। पुकार हो चुकी है और अन्धकार का हृदय आने वाले मिलन के कारण, भय से धड़क रहा है।

तुच्छ जीवन को अपने पैरों तले कुचलते हुए और धरित्री की कोमल हरियाली को अपने पदचिह्नों के रुधिर से ढकते हुए, जो गर्व के मार्ग पर चलते हैं—उन्हें प्रसन्न होने दो। हे प्रभु, उन्हें धन्यवाद देने दो, क्योंकि दिन उनका है।

किन्तु मैं कृतज्ञ हूँ। मेरा भाग्य उन दीन जनों के साथ है, जो सहन करते हैं और शक्ति के भार को उठाते हैं, जो अपने चेहरों को छिपाते है और अपनी आहों को अन्धकार में ही दबा देते हैं।

उनकी पीड़ा की प्रत्येक तड़पन तुम्हारी रात्री की रहस्य-पूर्ण गहराइयों में स्पदित होती है।

उनका प्रत्येक अपमान तुम्हारे महान् मौन में संचित किया गया

और कल उनका हैं।

हे सूर्यदेव, रुधिर झरने वाले हृदय पर, प्रभात के पुष्पों में विकसित होते हुए उदित हो और गर्व की उन्मत्त मशालों को राख में विलोन होने दो।